B. A. Hons II nd Sem

Political ideology

Unit 3

आदर्शवाद

1. [परिचय](https://hi.vikaspedia.in/education/education-best-practices/92693e93094d93692893f915-93893f92793e92894d924-915947-93094292a-92e947902-90692693094d93693593e926#section1)
2. [आदर्शवादी की परिभाषा](https://hi.vikaspedia.in/education/education-best-practices/92693e93094d93692893f915-93893f92793e92894d924-915947-93094292a-92e947902-90692693094d93693593e926#section2)
3. [आदर्शवाद का विकास](https://hi.vikaspedia.in/education/education-best-practices/92693e93094d93692893f915-93893f92793e92894d924-915947-93094292a-92e947902-90692693094d93693593e926#section3)
4. [आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धांत](https://hi.vikaspedia.in/education/education-best-practices/92693e93094d93692893f915-93893f92793e92894d924-915947-93094292a-92e947902-90692693094d93693593e926#section4)

**परिचय**

आदर्शवाद शब्द अंग्रेजी के आइडियलिज्म शब्द का रूपांतर है, जिसकी उत्पति प्लेटो के विचारवादी सिद्धांत से हुई है। इस सिद्धांत के अनुसार अंतिम सत्ता विचारों अथवा विचारवाद की है। इस प्रकार असली शब्द तो आइडियलिज्म है किन्तु उच्चारण की सुविधा के लिए इस शब्द में अंग्रेजी भाषा के (L) अक्षर को जोड़कर इसे आइडियलिज्म की संज्ञा दी जाती है।

दार्शनिक सिद्धांत के रूप में आदर्शवाद वस्तु की अपेक्षा विचारों, भावों तथा आदर्शों के महत्त्व को स्वीकार करके प्राकृत की अपेक्षा मानव तथा उसके व्यक्तित्त्व के विकास एवं आध्यत्मिक मूल्यों को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करता है जिससे विभिन्नता में एकता (ईश्वर) का ज्ञान हो जाये।

आदर्शवाद की यह धारणा है कि भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत आर्थिक उत्कृष्ट एवं महान है। इसका कारण ये है कि भौतिक जगत नाशवान है। अत: यह असत्य है। इसके विपरीत आध्यात्मिक जगत विचारों, भावों तथा आदर्शों का संसार है जिसके ज्ञान से मन तथा आत्मा का ज्ञान होता है। इस दृष्टि से इस महान दर्शन के अनुसार केवल आध्यात्मिक जगत ही सत्य है। इससे परे तथा इसके पश्चात और कुछ नहीं है। इस प्रकार आदर्शवाद, प्रकृतिवाद अथवा वैज्ञानिक तत्वों की अपेक्षा मानव तथा उसके विचारों भावों तथा आदर्शों की आध्यात्मिकता के अधिक महत्त्व देते हुए मानव तथा उसके मस्तिष्क के अध्ययन पर बल देता है।

इस दर्शन के अनुसार मानव की प्रकृति आध्यात्मिक होती है जिसकी अभिव्यक्ति वह बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक तथा धार्मिक क्षेत्रों में करता है। निम्न जन्तुयों तथा पशुयों के साथ यह बात नहीं है। इसलिए पशुओं की अपेक्षा मानव का जीवन अधिक श्रेष्ठ होता है।

आदर्शवाद मानव के अध्ययन पर इसलिए भी अधिक बल देता है, क्योंकि अन्य पशुओं की तुलना में मानव की वृद्धि तथा विवेक आदि शक्तियाँ भी आधिक होती है। अपनी प्रखर बुद्धि एवं विवेक के बल पर मानव अन्य पशुओं की भांति वातावरण का देवल दस ही नहीं बना रहता अपितु उसमें आवशयकतानुसार परिवर्तन करके देवत्व का स्थान भी ग्रहण करता है तथा अनके प्रकार की मानसिक, कलात्मक तथा धार्मिक क्रियाओं में भाग लेते हुए धर्म तथा आचरणशास्त्र आदि का सृजन करता है। वर्तमान सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक वातावरण मानव ने स्वयं भी बनाया है।

संक्षेप में आदर्शवाद मानव तथा उसके विचारों, भावों तथा आदर्शों को महत्वपूर्ण स्थान देता है। इन्हीं आदर्शों तथा मूल्यों को प्राप्त करके मानव अपने व्यक्तित्व को विकसित करते हुए अपनी आत्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करके परमब्रह्म परमेश्वर के साथ साक्षात्कार कर सकता है। अत: आदर्शवाद के अनुसार वास्तविक सत्ता आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं। इस दर्शन के अनुसार देश ततः काल में सृष्टि का क्रम नित्य तथा आध्यात्मिक संघ के प्रकटीकरण के कारण चलता है। इस प्रकार आदर्शवाद का क्षेत्र विश्व की अनादी, अपरिमित नित्य तथा अनन्त सत्ता है, न कि कोई तटस्थ एवं विरोधी संसार। होने के शब्दों में – **“ आदर्शवादी शिक्षा-दर्शन व्यक्ति को वह स्वरुप प्रदान करता है जिसमें वह अपने को मानसिक विश्व का पुर्नाश समझने लगे। ”**

आदर्शवादी दर्शन का प्रतिपादन, सुकरात, प्लेटो, डेकाटें, स्पनोजा, बर्कले, कान्ट, फिटेश, शेलिग, हिंगल, ग्रीन, शापन हावर तथा जेंटाइल आदि अनके पाश्चात तथा वेदों एवं उपनिषदों के प्रणेता महर्षियों से लेकर अरविन्द घोष तक अनके पूर्वी दार्शनिक ने किया है।

आदर्शवादी की परिभाषा

आदर्शवादी के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम निम्नलिखित पंकियों में प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषायें दे रहें हैं –

डी० एम० दत्ता- “आदर्शवादी वह सिद्धांत है जो अन्तिम सत्ता आध्यात्मिक मानता है। ”

जे० एस० रास- “ आदर्शवादी दर्शन के बहुत से और विविध रूप है। परन्तु सबका आधारभूत तत्व यही है कि संसार का उत्पादन कारण मन तथा आत्मा है, कि वास्तविकता स्वरुप मानसिक स्वरुप का है। “

ब्रुबेकर- “ आदर्शवादी इस बाक का संकेत देते हैं कि संसार को समझने के लिए मन अथवा मस्तिष्क सर्वोपरि है। उनके लिए इससे अधिक और कोई बात नहीं है कि मन संसार को समझने में लगा रहे और किसी बात को इससे अधिक वास्तविकता नहीं की जा सकती है, क्योंकि मन से अधिक किसी और बात को वास्तविकता समझना स्वयं मन की कल्पना होगी। ”

आदर्शवाद का विकास

आदर्शवाद एक प्राचीन विचारधारा है। इसका विकास उसी समय से माना जाता है जब से मनुष्य ने चिन्तन करना आरम्भ किया। इस दर्शन के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता कि इसका ऐतिहासिक जन्म पाश्चात देशों में सुकरात के प्रसिद्ध शिष्य प्लेटो तथा भारत में वैदिक एवं उपनिषद् काल से हुआ। इस प्रकार पूरब तथा पश्चिम दोनों ने मिलकर आदर्शवाद के विकास में अपना-अपना योग दिया है।

आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धांत

**सम्पूर्ण जगत के दो रूप –**आदर्शवाद के अनुसार सम्पूर्ण जगत के केवल दो रूप हैं – (1) आध्यात्मिक जगत तथा (2) भौतिक जगत। आदर्शवादी बहुत जगत की तुलना में भौतिक जगत तुलना में आध्यात्मिक जगत को अधिक महत्त्व देते हैं। उनका विश्वास है कि अध्यात्मिक जगत की तुलना में भौतिक जगत केवल एक झलक मात्र है। इसका कारण यह है कि भौतिक तत्व नाशवान है। अत: यह असत्य है। इसके विपरीत आध्यात्मिक जगत सत्य है तथा यथार्थ है। इसका ज्ञान पारपत करने से मन तथा आत्मा का ज्ञान प्राप्त  होता है। अत: भौतिक तत्व की अपेक्षा आध्यात्मिक सत्ता अथवा अध्यात्मिक जगत का ज्ञान प्राप्त करना मानवीय जीवन का मुख्य लक्ष्य है। एच० एन० हार्न के अनुसार – “आदर्शवाद के अनुसार देश और काल में सृष्टि का क्रम नित्य तथा अध्यात्मिक सत्य के प्रकटीकरण के कारण चलता है। ”

वस्तु की अपेक्षा विचार का महत्त्व – आदर्शवादीयों के अनुसार मन तथा आत्मा का ज्ञान केवल विचारों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने भौतिक जगत के पदार्थों तथा वस्तुओं की तुलना में विचार एवं भाव जगत को अधिक महत्वपूर्ण माना है। उसका पूर्ण विश्वास है कि वस्तु अथवा पदार्थ असत्य है। केवल विचार ही सत्य है, सर्वव्यापी हैं तथा अपरिवर्तनशील हैं। इन्हीं विचारों में संसार के समस्त तत्व निहित हैं। प्लेटो का मत है – **“विचार अन्तिम एवं सार्वभौमिक महत्त्व वाले होते हैं। यही वे परमाणु हैं जिनसे विश्व को रूप प्राप्त होता है। ये वे आदर्श अथवा प्रतिमान हैं जिनके द्वारा उचित की परीक्षा की जाती है। ये विचार अन्तिम तथा अपरिवर्तनीय हैं। ”**

**जड़ प्रवृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्त्व –**आदर्शवाद के अनुयायी जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य को आधिक महत्त्व देते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य में विचार तथा अनुभव करने की शक्ति होती है क्योंकि आदर्शवादी अनुभव जगत को अधिक महत्त्व देते हैं इसलिए अनुभवकर्ता स्वयं और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। मनुष्य विवेकयुक्त तथा बुद्धियुक्त प्राणी है। अत: वह अन्य पशुओं की भांति वातावरण का केवल दास ही नहीं बना रहता है अपितु उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करता है, देवत्व का स्थान ग्रहण करता है तथा अपनी अनके प्रकार की मानसिक, धार्मिक एवं कलात्मक क्रियाओं में भाग लेने के परिणामस्वरूप धर्म, आचारशास्त्र, कला तथा साहित्य का सृजन भी करता है। रस्क ने मनुष्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – “इस आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण स्वयं मनुष्य ने ही किया है अर्थात समस्त नैतिक तथा अध्यात्मिक वातावरण समस्त मनुष्यों की रचनात्मक क्रियायों का ही फल है। “

**आध्यात्मिक सत्यों तथा मूल्यों में विश्वास –**आदर्शवादीयों के अनुसार जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों तथा सत्यों को प्राप्त करना है। ये अध्यात्मिक मूल्य हैं – (1) सत्यं (2) शिवम् (3) सुन्दरम्। आदर्शवादीयों के अनुसार ये मूल्य सदैव अमर हैं। जो मनुष्य इन अध्यात्मिक मूल्यों को जान लेता है वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में, इन मूल्यों को प्राप्त करना ही ईश्वर की प्राप्ति है अत: मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य इन्हीं मूल्यों को प्राप्त करना है। आदर्शवादी का यह विश्वास है कि ये तीनो मूल्य एक-दूसरे को पृथक हैं। इन तीनो मूल्यों को अलग-अलग ही प्राप्त किया जा सकता है। सत्य को प्राप्त करके शिव तथा सौदर्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु यह निश्चित है कि इनमें से प्रत्येक आध्यात्मिक मूल्य को प्राप्त करने क्या लिए मन की तीनों क्रियायें – (1) ज्ञान (2) इच्छा का अनुभव, तथा चेष्टा अर्थात कुछ करने की इच्छा अवश्य सहायक होती है। ज्ञान के द्वारा सत्य को तथा इच्छा के द्वारा सौंदर्य को एवं चेष्ठा अथवा प्रयत्न के द्वारा शिवं को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार आदर्शवादीयों के अनुसार मनुष्य के जीवन का लक्ष्य इन तीनों आध्यात्मिक मूल्यों को नि:स्वार्थ रूप से प्राप्त करके सत्यं को सत्य के लिए, शिवं को शिव के लिए तथा सुन्दर को सुन्दर के लिए अपने जीवन में ढालना चाहिये। जे०एस० रास का भी यह मत है – “ आदर्शवादीयों के अनुसार शिवं, सत्यं तथा सुन्दरं निरपेक्ष गुण हैं जिसमें प्रत्येक्ष अपनी आवश्यकता के कारण उपस्थित है तथा वह अपने आप में पूर्णतया वांछनीय है। ”

# **हेगेल का दर्शन**

हेगेल का दर्शन **निरपेक्ष प्रत्ययवाद** या **चिद्वाद** (Absolute Idealism) अथवा **वस्तुगत चैतन्यवाद** (Objective Idealism) कहलाता है; क्योंकि उनके मत में आत्मा-अनात्मा, द्रष्टा-दृश्य, एवं प्रकृति-पुरुष सभी पदार्थ एक ही निरपेक्ष ज्ञानस्वरूप परम तत्व या सत् की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। उनके अनुसार विश्व न तो अचेतन प्रकृति या पुद्गलों का परिणाम है और न किसी परिच्छिन्न व्यक्ति के मन का ही खेल। जड़-चेतन-गुण-दोष-मय समस्त संसार में एक ही असीम, अनादि एवं अनंत चेतन तत्व, जिसे हम [परब्रह्म](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B9%E0%A5%8D%E0%A4%AE) कह सकते हैं, ओतप्रोत है। उससे पृथक् किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं। वह निरपेक्ष चिद् या परब्रह्म ही अपने आपकी अपनी ही स्वाभाविक क्रिया से विविध वस्तुओं या नैसर्गिक घटनाओं के रूप में सतत प्रकट करता रहता है। उसे अपने से पृथक् किसी अन्य साधन या सामग्री की आवश्यकता नहीं। हेगेल के अनुसार पुद्गलात्मक विश्व और हमारे तन, परस्पर भिन्न होने पर भी, एक ही निरपेक्ष सक्रिय परब्रह्म की अभिव्यक्तियाँ होने के नाते एक दूसरे से घनिष्ठतापूर्वक संबंधित एवं अवियोज्य हैं। हेगेल के विचार में संसार का सारा ही विकसात्मक क्रियाकलाप सक्रिय ब्रह्म का ही क्रियाकलाप है। क्या जड़ क्या चेतन, सभी पदार्थ और प्राणी उसी एक निरपेक्ष विद्रूप सत् के सीमित या परिच्छिन्न व्यक्त रूप हैं। जड़ीभूत प्रकृति, प्राणयुक्त वनस्पतिजगत्, चेतन पशुपक्षी तथा स्वचेतन मनुष्यों के रूप में वही एक परब्रह्म अपने आपको क्रमश: अभिव्यक्त करता है और उसकी अबतक की अभिव्यक्तियों में आत्मसंवित्तियुक्त मानव ही सर्वोच्च अभिव्यक्ति है, जिसके दार्शनिक, धार्मिक तथा कलात्मक उत्तरोत्तर उत्कर्ष के द्वारा ब्रह्म के ही निजी प्रयोजन की पूर्ति होती है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्म अपने आपको विश्व के विविध पदार्थों के रूप में प्रकट करके ही अपना विकास करता है।

इस प्रकार, हेगेल का निरपेक्ष ब्रह्म एक सक्रिय मूर्त सार्वभौम (Concrete universal) या गत्यात्मक (Dynamic) एवं ठोस सार्वभौत तत्व है, अमूर्त सार्वभौम (Abstract universal) नहीं। वह [शंकराचार्य](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B6%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%9A%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AF) के ब्रह्म के सदृश न तो शांत या कूटस्थ (Static) है और न भेदशून्य। हेगेल ने शैलिंग के भेदशून्य (Differenceless) ब्रह्म को एक ऐसी अंधकारपूर्ण रात्रि के समान बताकर, जिसमें विविध रंगों की सभी गौएँ काली दिखाई पड़ती हैं, सभी भेदशून्य ब्रह्मवादियों की कटाक्षपूर्ण आलोचना की है। शैलिंग चराचरात्मक समस्त विश्व की आविर्भूति ब्रह्म से स्वीकार करते हुए भी उसे सब प्रकार के भेदों से रहित तथा प्रपंच के परे मानते थे। परंतु भेदशून्य अगत्यात्मक, तत्व से भेदपूर्ण तथा गत्यात्मक सृष्टि के उदय या विकास को स्वीकार करना हेगेल को युक्तियुक्त नहीं प्रतीत हुआ। उन्होंने ब्रह्म को विश्वातीत नहीं माना। हेगेल का ब्रह्म किसी हद तक श्रीरामानुजाचार्य के [ईश्वर](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%88%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B0) से मिलता जुलता है। वे, श्रीरामानुजाचार्य की तरह, ब्रह्म के सजातीय विजातीय भेद तो नहीं मानते, परंतु उसमें स्वगतभेद अवश्य स्वीकार करते हैं। उन्होंने उसे भेदात्मक अभेद (Identity-in difference) या अनेकतागत एकता (unity-in-diversity) के रूप में स्वीकार किया है, शुद्ध अभेद या कोरी एकता के रूप में नहीं। इसी प्रकार, श्रीरामानुजचार्य का सिद्धांत भी विशिष्टाद्वैत है, शुद्धाद्वैत या अद्वैत नहीं। हेगेल छांदोग्योपनिषद् के "सर्व खल्विदं ब्रह्म" (3.14.1), ऋग्वेद के "पुरुष एवेदं सर्वम्" तथा श्रीमद्भगवद्गीता के "सर्वत: परिणपावं" (13.13) आदि सिद्धांत के अनुमोदक तो अवश्यमेव कहे जा सकते हैं। परंतु मांडूक्योपनिषद् के "अमात्रश्चतुर्थो व्यवहार्य: प्रपंचोपशमा..." (12) सिद्धांत के माननेवाले नहीं।

हेगेल ने क्रियात्मक एवं गतिशील विश्व के विभिन्न रूपों में होनेवाली ब्रह्म की आत्माभिव्यक्ति को एक विशेष यौक्तिक या बौद्धिक नियम के अनुसार घटित होनेवाली माना है। उनका कहना था कि सत्य यौक्तिक है और यौक्तिक सत्य है। दूसरे शब्द में, उनके अनुसार बौद्धिक विचार का नियम और संसार के विकास का नियम एक ही है और उन्होंने यह नियम विरोध या विरोध का नियम (Law of Contradiction) बतलाया है। इसके अनुसार जड़ात्मक जगत एवं वैयक्तिक मन (mind) दोनों ही के रूप में निरपेक्ष ब्रह्म के विकास का हेतु उस तत्व का आंतरिक विरोध (opposition) या व्याघात (Contradiction) ही है। हेगेल के अनुसार दो विरोधी या परस्पर व्याघातक विचारों या पदार्थों का समन्वय एक तीसरे विचार या पदार्थ में हुआ करता है। उदाहरणार्थ, हमारे मन में सर्वप्रथम "सत्" (being) का विचार उदय होता है, या यों कहिए कि संसार के समस्त पदार्थों की आदि अवस्था "सत्" ही है। परंतु "केवल सत्" या "सन्मात्र" वस्तुत: असत् सदृश है। अत: सत् के अंतस्थल में ही असत् या अभाव (non-being) सन्निहित है। और सत् असत् की यह विप्रतिपत्ति ही सत् के भावी विकास का मूल हेतु बन जाती है। चूँकि विप्रतिपत्ति या विरोध यौक्तिक विचार को सह्य नहीं, अत: यह स्वभाव से ही उसके निराकरण की ओर अग्रसर हो जाता है तथा सत् और असत् नामक विरोधी प्रत्ययों के समन्वय का निष्पादन "भव" (becoming) नामक प्रत्यय में कर देता है। हेगेल प्रारंभिक प्रत्यय को पक्ष या निघान (Thesis), उसके विरोधी प्रत्यय को प्रतिपक्ष या प्रतिधान (Antithesis) तथा उनके मिलानेवाले प्रत्यय को समन्वय या समाधान (Synthesis) कहते हैं और उनकी यह पक्ष से समन्वयोन्मुखी पूरी प्रक्रिया विरोध समन्वय न्याय या द्वंद-समन्वय विधि (Dialetical method) अथवा त्रिकवाव (Dialecticism) नाम से जानी जाती है। उपर्युक्त उदाहरण में "सत्" पक्ष, "असत्" प्रतिपक्ष तथा "भव" समन्वय है। इस प्रकार हेगेल के विरोध-समन्वय-न्याय में पक्ष, प्रतिपक्ष, एवं समन्वय तीनों ही का समाहर होता है। इसे कुछ और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम अपने बाह्य ज्ञान को लें और देखें कि उसमें यह नियम किस प्रकार लागू होता है। हेगेल के कथनानुसार, किसी को भी बाह्य ज्ञान तभी होता है जब पहले ज्ञेय पदार्थ का विषय द्वारा ज्ञाता या विषयी का विरोध होता है (अर्थात् वह विषय उस तथाकथित विषयी को उसके बाहर निकालता है) और तत्पश्चात् वह विषयी उस विषय से विशिष्ट होकर अपने आपमें समाविष्ट होता है। यहाँ "विषयी" पक्ष तथा "विषय" प्रतिपक्ष है और उनका समन्वय विषयी द्वारा प्राप्त विषय संबंधी ज्ञान से होता है।

वस्तुत: हेगेल के मत में विचार एवं विश्व के सारे ही विकास की प्रगति, अनिवार्य रूप से, इसी विरोध समन्वय न्याय के अनुसार होती है। उन्होंने अनुभव या संसार के प्राय: सभी क्षेत्रों की व्याख्या में इस न्याय की प्रयुक्तता को प्रदर्शित करने का दु:साध्य किंतु प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि विश्व में जो कुछ भी होता है वह सब इस नियम के अनुसार होता है और इसके परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर नवीन भेदप्रभेद या पदार्थों का आविर्भाव होता रहता है। कोई भी भेद कभी भी निरपेक्ष प्रत्यय या परब्रह्म के बाहर नहीं होता और न वह ब्रह्म ही कभी प्रापंचिक पदार्थों से पृथक् होता है परंतु संसार में कभी ब्रह्म की संभाव्यताओं (Potentialities) का अंत नहीं होता और इस दृष्टि से हम उसे संसारातीत भी कह सकते हैं। हेगेल ने इसी ब्रह्म या निरपेक्ष प्रत्यय में समस्त भूत, वर्तमान एवं भावी भेदों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।